International Journal of Hindi Research
www.hindijournal.com
ISSN: 2455-2232
Received: 23-01-2026; Accepted: 22-02-2026; Published: 09-03-2026
Volume 12, Issue 1, 2026, Page No. 217-218

वैदिक कालीन जीवन–पद्धति और पर्यावरणीय संतुलन सामाजिक एवं सांस्कृतिक आयाम

बेअन्त कौर[1], डॉ. सुनीता स्वामी[2]
[1] शोधार्थी, टांटिया यूनिवर्सिटी, श्रीगंगानगर, राजस्थान, भारत
[2] सहायक प्रोफेसर, टांटिया यूनिवर्सिटी, श्रीगंगानगर, राजस्थान, भारत

सारांश
वैदिक कालीन जीवन–पद्धति प्रकृति के साथ संतुलित सहअस्तित्व पर आधारित थी, जिसमें सामाजिक संगठन, सांस्कृतिक मान्यताएँ, धार्मिक आचार और आर्थिक गतिविधियाँ पर्यावरणीय संवेदनशीलता से जुड़ी हुई थीं। पृथ्वी को माता, जल को जीवन, वायु को प्राण तथा अग्नि को ऊर्जा के रूप में स्वीकार कर वैदिक समाज ने प्रकृति के प्रति श्रद्धा, संयम और उत्तरदायित्व का भाव विकसित किया। आश्रम व्यवस्था, यज्ञ परंपरा, वन–संस्कृति, कृषि एवं पशुपालन, जल–संरक्षण और औषधि–संवर्धन जैसी व्यवस्थाएँ पर्यावरणीय संतुलन को बनाए रखने के साधन थीं। 'ऋत' और 'धर्म' की अवधारणाएँ ब्रह्मांडीय व्यवस्था और नैतिक अनुशासन को जोड़ती थीं, जिससे मानव–जीवन प्राकृतिक चक्रों के अनुरूप संचालित होता था। यह लेख वैदिक कालीन जीवन–पद्धति के सामाजिक एवं सांस्कृतिक आयामों का विश्लेषण करते हुए प्रतिपादित करता है कि प्राचीन भारतीय चिंतन में निहित पर्यावरण–दृष्टि आज के वैश्विक पर्यावरण संकट के संदर्भ में अत्यंत प्रासंगिक और मार्गदर्शक है।

मूल शब्द: वैदिक, जीवन, पद्धति, पर्यावरण, संतुलन, सामाजिक, सांस्कृतिक, प्रकृति

प्रस्तावना
वैदिक काल भारतीय सभ्यता के विकास का वह चरण है जिसमें मानव–जीवन, प्रकृति और आध्यात्मिक चेतना के बीच गहरा सामंजस्य स्थापित हुआ। यह सामंजस्य केवल दार्शनिक चिंतन तक सीमित नहीं था, बल्कि सामाजिक संरचना, सांस्कृतिक परंपराओं, आर्थिक गतिविधियों और दैनिक जीवन की व्यवहारिक प्रणाली में स्पष्ट रूप से अभिव्यक्त होता था। वैदिक समाज ने प्रकृति को भोग की वस्तु न मानकर जीवन का आधार और सहचर माना। इसी कारण उनकी जीवन–पद्धति पर्यावरणीय संतुलन की स्वाभाविक संरक्षक थी।
वैदिक साहित्य में 'ऋत' की अवधारणा ब्रह्मांडीय व्यवस्था और संतुलन का द्योतक है। सूर्य का उदय–अस्त, ऋतुओं का चक्र, वर्षा का आगमन, नदियों का प्रवाह ये सब 'ऋत' के अंतर्गत माने गए। मनुष्य को भी इसी व्यवस्था का अंग समझा गया। अतः उसका कर्तव्य था कि वह प्राकृतिक संतुलन को भंग न करे। यह दार्शनिक आधार सामाजिक जीवन के संगठन में भी परिलक्षित होता है।

सामाजिक संरचना और प्रकृति के साथ सहअस्तित्व
वैदिक समाज का संगठन परिवार, कुल और जनपद की इकाइयों में था। ग्राम–जीवन प्रकृति के समीप विकसित हुआ। घरों का निर्माण स्थानीय सामग्री से होता था, जिससे पर्यावरण पर न्यूनतम प्रभाव पड़ता था। जीवन की आवश्यकताएँ सीमित थीं और उपभोग संयमित था। 'तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा' की भावना उपभोग में मर्यादा और संतुलन का निर्देश देती थी।
आश्रम व्यवस्था भी पर्यावरणीय दृष्टि से महत्वपूर्ण थी। ब्रह्मचर्य आश्रम में विद्यार्थी गुरुकुलों में प्रकृति के मध्य शिक्षा ग्रहण करते थे। गुरुकुल प्रायः वन–प्रदेशों में स्थित होते थे, जहाँ विद्यार्थी वृक्षों, नदियों और पशु–पक्षियों के साथ निकट संबंध स्थापित करते थे। इससे प्रकृति के प्रति संवेदनशीलता और संरक्षण की भावना विकसित होती थी। वानप्रस्थ आश्रम में व्यक्ति वन में निवास कर साधना करता था, जो वनसंस्कृति के संरक्षण का माध्यम था।

कृषि, पशुपालन और प्राकृतिक संसाधनों का संतुलित उपयोग
वैदिक काल की अर्थव्यवस्था का आधार कृषि और पशुपालन था। कृषि ऋतुओं के अनुरूप की जाती थी। वर्षा पर निर्भर खेती में प्रकृति के चक्रों का सम्मान आवश्यक था। भूमि को माता माना गया "माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः" यह मंत्र मनुष्य और भूमि के आत्मीय संबंध को दर्शाता है। भूमि का अंधाधुंध दोहन वर्जित था। पशुपालन विशेषतः गौ–पालन का सामाजिक और आर्थिक महत्व था। गौ को 'अघ्न्या' कहा गया, अर्थात् जिसे मारना अनुचित है। यह भावना पशु–संवर्धन और जैव–विविधता की रक्षा का संकेत देती है। पशुधन केवल आर्थिक साधन नहीं, बल्कि सामाजिक प्रतिष्ठा और धार्मिक आस्था से जुड़ा था।

जल–संरक्षण और नदियों का सांस्कृतिक महत्व
वैदिक समाज में जल को जीवन का मूल स्रोत माना गया। नदियों की स्तुति में उन्हें मातृ–स्वरूपा कहा गया। जल के बिना जीवन की कल्पना नहीं थी, इसलिए जल–स्रोतों की शुद्धता और संरक्षण पर बल दिया गया। कुओं, सरोवरों और नदियों का सम्मान और पवित्रता बनाए रखना सामाजिक कर्तव्य था।
वर्षा के देवता इंद्र की स्तुति में वर्षा की कामना की जाती थी, जिससे कृषि और जीवन चक्र चलता रहे। यह प्रार्थना केवल धार्मिक कर्मकांड नहीं, बल्कि जल–चक्र के महत्व की स्वीकृति थी।

वन–संस्कृति और जैव–विविधता
वन वैदिक जीवन का अभिन्न अंग थे। अरण्यक ग्रंथों की रचना वन में हुई, जिससे स्पष्ट है कि वन ज्ञान और साधना के केंद्र थे। वृक्षों की पूजा की परंपरा ने उनके संरक्षण को सुनिश्चित किया। पीपल, वट और अशोक जैसे वृक्षों को पवित्र माना गया। वनों से औषधियाँ प्राप्त होती थीं। अथर्ववेद में औषधियों की स्तुति यह दर्शाती है कि जैव–विविधता के प्रति सम्मान और संरक्षण की भावना थी। औषधियों को माता कहा गया, जिससे उनके संवर्धन का सांस्कृतिक आधार तैयार हुआ।

यज्ञ और सामुदायिक जीवन
यज्ञ वैदिक समाज की सामूहिक गतिविधि थी। यज्ञ में अग्नि, वायु, घृत और औषधियों का उपयोग होता था, जो प्रकृति के तत्त्वों के प्रति सम्मान का प्रतीक था। यज्ञ का दार्शनिक अर्थ पारस्परिक सहयोग और संतुलन है। प्रत्येक व्यक्ति समाज और प्रकृति के प्रति उत्तरदायी था।

सामूहिक प्रार्थनाओं में 'द्योः शान्तिः, अन्तरिक्षं शान्तिः, पृथिवी शान्तिः' कहकर समस्त प्रकृति के लिए शांति की कामना की जाती थी। यह पर्यावरणीय संतुलन की सामूहिक चेतना का परिचायक है।

सांस्कृतिक मान्यताएँ और नैतिक अनुशासन

वैदिक संस्कृति में धर्म और प्रकृति का गहरा संबंध था। धर्म का अर्थ केवल पूजा–पाठ नहीं, बल्कि कर्तव्य और नैतिकता था। प्राकृतिक संसाधनों का असीमित उपभोग धर्म–विरुद्ध माना जाता था। संयम, त्याग और संतुलन सामाजिक आदर्श थे।

त्योहार और अनुष्ठान भी प्रकृति–चक्रों से जुड़े थे। ऋतुओं के परिवर्तन के साथ उत्सव मनाए जाते थे। इससे मानव–जीवन प्राकृतिक लय के अनुरूप चलता था।

पर्यावरणीय संतुलन की समग्र दृष्टि

वैदिक कालीन जीवन–पद्धति में पर्यावरणीय संतुलन कोई पृथक विषय नहीं था, बल्कि जीवन का स्वाभाविक अंग था। सामाजिक संरचना, आर्थिक गतिविधि, सांस्कृतिक मान्यता और आध्यात्मिक साधना सभी में प्रकृति के प्रति सम्मान और संरक्षण की भावना अंतर्निहित थी।

आज की उपभोक्तावादी संस्कृति में जहाँ संसाधनों का असीमित दोहन हो रहा है, वहाँ वैदिक जीवन–पद्धति संयम, सहअस्तित्व और संतुलन का संदेश देती है। आधुनिक पर्यावरण संकट के समाधान के लिए आवश्यक है कि हम वैदिक दृष्टि से प्रेरणा लें और प्रकृति के साथ अपने संबंधों को पुनर्संतुलित करें।

निष्कर्ष

वैदिक कालीन जीवन–पद्धति पर्यावरणीय संतुलन की सशक्त मिसाल है। इसमें प्रकृति के प्रति श्रद्धा, संसाधनों के प्रति संयम, सामाजिक उत्तरदायित्व और सांस्कृतिक संरक्षण की भावना समाहित थी। यह स्पष्ट है कि प्राचीन भारतीय समाज ने प्रकृति को जीवन का आधार मानकर ऐसी सामाजिक और सांस्कृतिक व्यवस्था विकसित की, जो पर्यावरण के संरक्षण में सहायक थी।

अतः वैदिक कालीन जीवन–पद्धति केवल ऐतिहासिक अध्ययन का विषय नहीं, बल्कि वर्तमान और भविष्य के लिए प्रेरणा–स्रोत है।

संदर्भ सूची

1. अरविन्द, श्री. (1998). 'वेद का रहस्य'. श्री अरविन्द आश्रम प्रकाशन विभाग।
2. भट्टाचार्य, सुकुमारी. (1984). 'भारतीय देवपरंपराः वेदों से पुराणों तक एक तुलनात्मक अध्ययन'. कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय प्रकाशन।
3. गोंडा, जान. (1975). 'वैदिक साहित्यः संहिताएँ एवं ब्राह्मण ग्रंथ'. ओट्टो हैरासोविट्ज।
4. राधाकृष्णन, सर्वपल्ली. (1994). 'प्रधान उपनिषद'. हार्पर कॉलिन्स।
5. शर्मा, रामशरण. (2005). 'भारत का प्राचीन अतीत'. ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय प्रकाशन।
6. सिंह, एन. के. (2003). 'प्राचीन भारत में पर्यावरण नैतिकता'. डी.के. प्रिंटवर्ल्ड।